बी. ए. भाग-3
हिन्दी - प्रतिष्ठा
काव्य दोष

रमेश कुमार यादव
हिन्दी - विभाग
जी. के. कालेज
डुमरॉव बक्सर

काव्यास्वाद में बाधक तत्व को दोष कहा जाता है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में दोष निरुपण की दो परंपराएं मिलती हैं। ध्वनिवादी आचार्यों ने रसापकर्षक तत्वों को दोष माना है, रसापकर्षका: दोषा: जबकि उनके पूर्व के आचार्यों ने गुण के विपर्यय को दोष कहा है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि दोष की स्थिति भावात्मक है, गुण उसका विपर्यय है, "एत एव विपर्यस्ता गुणा: काव्येषु कीर्तिता:"। भामह के अनुसार काव्य में सत्कवि इसका प्रयोग नहीं करते। दण्डी के अनुसार दोष काव्य में विफलता के कारण होते हैं इसलिए विद्वानों को काव्य में इसका परिहार करना चाहिए। अग्निपुराण के अनुसार दोष उद्वेग जनक होते है। इसी तरह वामन, मम्मट आदि ने भी दोष की विस्तृत चर्चा की है और उससे बचने की सलाह दी है।

आनंदवर्धन ने रस विषयक दोषों के निरुपण में 'दोष' शब्द के स्थान पर 'अनौचित्य' शब्द का प्रयोग किया है और क्षेमेन्द्र ने इसी विषय पर 'औचित्य विचार चर्चा' नामक ग्रंथ लिखा है। हिन्दी के आचार्यों में केशव ने दोष के तीन वर्ग तथा उनके भेदों का उल्लेख किया है। इसी तरह चिंतामणि, तोषनिधि, कुलपति मिश्र और सूरति मिश्र ने भी दोषों तथा उनको दूर करने के उपायों पर विस्तार से विचार किया है। इस तरह भारतीय साहित्य शास्त्र में काव्य दोष और उनके परिहार के उपायों पर क्रमबद्ध और विस्तृत चर्चा मिलती है। जिस प्रकार किसी भी वस्तु को उत्तम गुणों से अलंकृत करने से पहले उसे निर्दोष करना आवश्यक होता है उसी प्रकार काव्य को भी उसके गुणों से सजाने से पहले उसके दोषों को दूर करना आवश्यक है।

दोषों की संख्या के विषय में भारतीय विद्वानों में मतभेद है। आचार्य भरत से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक सभी ने उसका वर्णन संख्याविभेद से किया है। इन सबके सारांश रूप काव्य-दोषों को तीन भेदों में विभाजित किया जा सकता है, शब्द संबंधी दोष, अर्थ संबंधी दोष, और रस संबंधी दोष।

पाठक को काव्यानंद (रसास्वाद) लेने में सर्वप्रथम कविता के शब्दों से परिचय होता है। यदि शब्दों की बनावट में कोई असुविधा होती है और काव्यानंद में बाधा पड़ने लगती है, तो इसे शब्द दोष कहा जाता है। शब्दों के द्वारा ही पद एवं वाक्य की सृष्टि होने से ये शब्द-दोष पद एवं वाक्य संबंधी भी होते हैं।

श्रुतिकटुत्व, च्युतसंस्कृति, अश्लीलत्व, ग्राम्यत्व, अनुचितार्थ, असमर्थ, अप्रयुक्त, अप्रतीत्व, क्लिष्टत्व, निहितार्थ, निरर्थक, न्यूनपदत्व, अधिकपदत्व और अक्रमत्व आदि प्रमुख शब्द दोष हैं। शब्द दोषों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। जैसे- "मरम वचन जब सीता बोला।" (च्युतसंस्कृति) "मंदिर- अरध-अवधि हरि बदि गये हरि अहार-चलि जात" (क्लिष्टत्व)। सुंदर है विहग सुमन सुंदर मानव तुम सबसे सुंदरतम" (अधिकपदत्व)।

कुछ आचार्यों ने वाक्य दोषों का एक अलग वर्ग बनाया है और उसमें न्यूनपदत्व, अधिकपदत्व, पतत्प्रकर्षत्व आदि दोषों को शामिल किया है।

पाठक काव्यानंद तभी प्राप्त कर सकता है जब वह उसके अर्थ से सुबगत हो। किन्तु कहीं-कहीं अर्थ ग्रहण करने में भी बाधा पहुँचती है। अतः जहां अर्थ-ग्रहण करने में बाधा पहुंचे वहां

अर्थ-दोष समझा जायेगा। इसके प्रमुख भेद हैं अपुष्ट, व्याहत, पुनरुक्त, दुष्क्रमत्व, प्रसिद्धि विरुद्ध अश्लीलत्व आदि। कुछ उदाहरण—

"मुख मयंक को देखकर विकसा मानस कंज।"
(दुष्क्रमत्व)

"मुक्तहार रहते थे गृह-गृह नहीं अर्गला का था काम।"
(पुनरुक्ति)

"कटि के नीचे चिकुर जाल में, उलझा रहा था बायाँ हाथ।"
(अश्लीलत्व)

व्यंजना शक्ति से रस प्राप्त होने वाले काव्य को उत्तम काव्य कहा गया है। इसलिए काव्य में रस के उपादान अनुभाव, स्थायीभाव आदि व्यंग्यात्मक रूप से आने चाहिये। इन सभी रस के उपादानों के स्पष्ट वर्णन से रस में बाधा पड़ती है। ये बाधक तत्व रस-दोष कहलातेहैं। इनके मुख्य भेद हैं स्वशब्दवाच्यत्व, विभाव और अनुभाव की क्लिष्ट-कल्पना और परिपंथिरसांगपरिग्रह। आचार्यों ने उपर्युक्त रस-दोषों के अतिरिक्त कुछ अन्य रस-दोषों का उल्लेख भी किया है।

रमेश कुमार यादव
असिस्टेंट-प्रोफेसर
हिन्दी-विभाग
डी. के. कालेज, डुमराँव
बक्सर (बिहार)